eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

# कबीर का जीवन दर्शन

**[1]प्रोफेसर शशिप्रभा तोमर**
[1]विभागाध्यक्ष– हिन्दी विभाग, बी.डी.एम.एम. गर्ल्स डिग्री कॉलेज, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद

Received: 17 Dec 2023, Accepted: 15 January 2024, Published online: 01 February 2024

## Abstract

मानव जाति का सबसे बड़ा वरदान है उसकी 'वाणी' एवं 'शब्द'। शब्दों के द्वारा ही साहित्यकार अपनी अंतरंग भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। कबीर की सबसे बड़ी शक्ति उनकी वाणी थी। इस सम्बन्ध में डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन उल्लेखनीय है।

**बीज शब्दः– साहित्य, समाज,** कबीर, आध्यात्मिकता, जीवन दर्शन।

## Introduction

''भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे 'वाणी का डिक्टेटर' थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया– बन गया है, तो सीधे–सीधे, नहीं तो दरेरा देकर।''[1]

उनके राम निरंकार, निर्गुण, ईशतत्व, ज्योति तत्व के रूप में व्यवहृत है। कबीर ब्रह्म के अनेक नामों को एक ही तत्व के विविध नाम स्वीकार करते हैं। वे भक्ति के आदर्श स्वरूप हैं।

कबीर में ईश्वर, ब्रह्म और राम एक ही तत्व हैं। कबीर में आध्यात्मिक ब्रह्म की भावना के दर्शन होते हैं।

''सूरज चन्द्र का एक ही उजियारा।
सब महि पसरा ब्रह्म–पसारा।।

कबीर की सम्पूर्ण साधना मुक्ति की साधना है। उनकी साधना आत्मोद्धार के पथ पर आगे बढने की है। उनके राम निर्लिप्त हैं। आत्मा को वे इसी निर्गुण निराकार ब्रह्म का अंश मानते हैं।

अध्यात्मवादी सृष्टि के अन्तर्गत अखण्ड अव्यक्त अनन्त और अमर एक ही मूल तत्व हैं। इस अव्यक्त सत्ता को कबीर ने अग्नि रूप कहा है। फिर भी अग्नि जल में परिवर्तित हुई।

तन भीतरि मन मानिया, बाहरि कहा न जाइ।
ज्वाला ते फिरि जल भया, बुझी बलंती ताइ।। (कबीर ग्रंथावली)

कबीर दार्शनिक हैं ओर दार्शनिक शब्दावली में दुरूहता का समावेश होता है –

डॉ0 राम खेलावन राय 'दीपक' के शब्दों में –

''संस्कृत के आकाश में उड़ने वाला दर्शन, कबीर के हाथों में आकर लोकभाषा के शब्दों में बिखर पड़ा। यह हिन्दी साहित्य का प्रथम अवसर था, जबकि संत कबीर ने दर्शन को, सत्य के तात्विक विवेचन को, लोक भाषा के शब्दों का जामा पहनाया ..... दार्शनिक शब्द जितना व्यापक एवं दुरूह क्यों न हो पर कबीर के हाथों में आकर सरल बन गया है।''[2]

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

उनकी रामभावना भारतीय ब्रह्म भावना के सर्वथा अनुरूप है। उन्होंने प्रधानतः ब्रह्म के निर्गुण अव्यक्त स्वरूप को ही प्रतिपादित किया है। कबीर के निर्गुण ब्रह्म के विषय में डॉ0 हजारीप्रसाद लिखते हैं– ''कबीरदास के निर्गुण ब्रह्म में गुण का अर्थ सत्व, रज आदिगुण है, इसलिए निर्गुण ब्रह्म का अर्थ वे निराकार, निस्सीम आदि समझते हैं, निर्विषय नहीं।''[3]

उन्होंने ब्रह्म में महान शक्ति को आरोपित किया है। ब्रह्म में सत्य और ज्ञान का आरोप किया है। साकार ब्रह्म को योगियों के द्वैताद्वैत विलक्षण ज्योतिरूप ब्रह्म के रूपों में उपनिषदों में वर्णित अनन्त प्रकाश रूप में तथा अंगुष्ठ– प्रमाण ज्योति के रूप में वर्णित किया है। कबीरदास के पदों में निर्गुण ब्रह्म के लिए कृपालु, भक्त–बछल' आदि पदों के प्रयोग के द्वारा निर्गुण भक्ति में आराध्य में सगुण ब्रह्म के गुणों का आरोप स्वाभाविक है। उन्होंने आत्मा की सर्वरूपता, सर्वात्मभावना एवं सर्वशक्तिमत्ता प्रतिपादित की है। अनहद शब्द के रूप में ब्रह्म–आस्था की कबीर ने अभिव्यक्ति की। इसी स्थिति में कबीर ने अजपा जाप और सुमिरन को महत्व दिया। कबीर के योग की अन्तिम स्थिति सहज योग की है। इसमें ब्रह्म को सहज शून्य के नाम से उच्चरित किया गया है।

संत कबीर की ब्रह्मभावना– राम भावना पर साधना की अनुभूत धारा का प्रभाव लक्षित होता है। उनके ब्रह्म का वर्णन सर्वथा अवर्णनीय है–

''पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कूँ सोभा नहीं, देख्या ही परवान।। (कबीर ग्रन्थावली)

वह ब्रह्म सत्य स्वरूप है। सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त हैं और सम्पूर्ण सृष्टि उस ब्रह्म में हैं। उनका दर्शन उनकी अनुभूति की परिणति है। उन्होंने ब्रह्मज्ञान को निरमल नीर ''सो जल निरमल कथत कबीर'' की संज्ञा दी। कबीर का ब्रह्म एक है, अखण्ड है, अद्वैत एवं अजन्मा है।

कबीर ने सामाजिक असमानता को दूर करने का प्रयास करते हुए एकेश्वरवाद का संदेश दिया। 'पाथर पूँजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार' कहकर मूर्तिपूजा का खंडन किया। उनका दर्शन ईश्वर और आत्मा दोनों में कोई अन्तर नहीं मानता। जन–जन की पीड़ा को देखकर ''चलती चक्की देखकर, दिया कबीरा रोय'' उनके हृदय की व्यथा अभिव्यक्त होती है।

ज्ञान मार्ग की बातें कबीर ने हिंदू, साधु, सन्यासियों से ग्रहण कीं जिनमें प्रेमतत्व का मिश्रण है। उन्होंने कर्म काण्ड को प्रधानता देने वालों पर व्यंग्य किया। वाह्य आडम्बरों से मानव–मानव में जो विभेद होता है, उसे दूर करने का प्रयास उनकी वाणी बराबर करती रही। समाज में व्याप्त असमानता, ऊँच–नीच, आचरण–भ्रष्टता की वे तीखी आलोचना एवं भर्त्सना करते हैं। जाति–पांति एवं वर्णाश्रम के घोर विरोधी होकर उनके काव्य में आक्रामकता एवं प्रहारकता का सम्मिलन है।

कबीरदास ऐसे मिलन–बिन्दु पर खड़े दृष्टिगोचर होते हैं जहॉ एक ओर हिन्दू धर्म है, तो दूसरी ओर इस्लाम धर्म। उनके काव्य का इतना व्यापक प्रभाव रहा कि उन्होंने जाति वर्ग एवं सम्प्रदायों की सीमाओं का अतिक्रमण कर मानव–धर्म और मानव समाज की स्थापना की। वास्तव में उनका दर्शन, जीवनगत सत्य का सन्देश देता है। जीवन की स्वाभाविक सात्विक क्रियाशीलता ही उनका दर्शन है। जिसका प्रसार उन्होंने अपने साहित्य में वर्णित किया है। धर्मान्धता पर तीखा प्रहार कबीर का दर्शन है। अद्वैत वेदान्त उनके दर्शन का मूलाधार है, जो शंकराचार्य से प्रभावित है। उस

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

युग में धर्म एवं दर्शन में क्रान्ति होने के फलस्वरूप उन्होंने धार्मिक एवं सामाजिक समन्वय का अभियान छेड़ दिया। भारतीय संस्कृति एवं मुस्लिम संस्कृति करके समन्वय का प्रयास ही उनका दर्शन है। उनके दर्शन में आत्मा, जगत और गुरु पर इस्लाम धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है। उनका मानना है–

''पाणी केरा बुदबुदा, इसी हमारी जाति
एक दिना छिप जाहिगे, तारे ज्यूं परभाति।'' (कबीर समग्र)

कबीर ने धर्म दर्शन के अतिरिक्त सामाजिक रहन–सहन, सामान्य जीवन को सहज और स्वाभाविक रूप से चित्रित किया है।

कबीर का काव्य दोहरे अनुभव संयोजन के मध्य उत्पन्न है और यह दोहरापन उनकी सम्पूर्ण काव्य को आवेष्टित करता है। जहॉ लोक मात्र प्रतीक के रूप में दृष्टव्य है वहीं दूसरी ओर उससे उत्पन्न अर्थ विधान की आध्यात्मिक अभिव्यंजना सम्पूर्ण व्यक्तित्व को लोकात्मक एवं आध्यात्मिक अर्थ संगीत से बांधकर अद्भुत बना देती है। उनका दर्शन, तृप्तों भवति, अमृतो भवति, आत्मरामो भवति' का दिग्दर्शन कराते हुए आत्म के आत्मरमण की कविता के रूप में परिलक्षित होता है।

''संत कबीर जाति व्यवस्था की निंदा करते हैं जो उनका धार्मिक एवं दार्शनिक आधार है। प्रायः सभी धर्म, दर्शन, समता मूलक हैं। इसीलिए धर्म दर्शन की समता में जाति, उसके क्रम या ऊँच–नीच का कोई सवाल नहीं हो सकता है।''[4] (कबीर समग्र)

कबीर ने जीवात्मा का वर्णन निर्गुण रूप में करते हुए उसके सत् स्वरूप की अनेकों प्रकार से अभिव्यंजना की है। वह उनके लिए घट–घट वासी अद्वैततत्व के साथ ब्रह्म के समकक्ष होने के साथ–साथ शक्तिशाली, चेतनस्वरूप, ज्ञानस्वरूप एवं आनन्द स्वरूप हैं। ब्रह्म एवं जीव का तादात्म्य ज्ञानात्मक, भावनात्मक और यौगिक है। उनका मत है कि ''केवल माया के वशीभूत होकर ही यह जीवात्मा संसार में जन्म–मरण के चक्कर में पड़ता रहता है। वैसे यह परमतत्व का ही रूप है ओर वह परमात्मा इस जीवात्मा में निरन्तर अद्वैतभाव से विद्यमान रहता है।''[5]

उन्होंने आत्मा को 'कमलिनी' भी कहा। वह सीधे आत्मारूपी कमलिनी से प्रश्न करते हैं 'काहे री नलिनी! तू कुम्हलानी।' इस आत्म की संज्ञा शरीर में आकर जीव हो जाती है। अद्वैतत्व में ब्रह्म एवं जीव दोनों एक हैं–

''जल में कुंभ, कुंभ में जल है, भीतर बाहरि पानी
फूटा कुंभ, जल जलहिं समाना, यह तथ कहौ गियानी (कबीर ग्रन्थावली)

कबीर का दर्शन माया को 'महाठगिनी' के रूप में वर्णित करता है। वह मीठी वाणी से विश्वमोहिनी नारी के रूप में त्रिगुणमयी फांस लेकर योगसाधना में बिघ्न उत्पन्न करती है। ''जे काटौ तो डहडही, सींचौ तो कुम्हिलाइ'' का कार्य करती है। यह 'कनक' और 'कामिनी' के रूप में प्रकट होकर जीवात्मा को परमात्मा से पृथक करती है। इसके पॉच पुत्र (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह (पंच विकार) हैं।

वे मानते हैं कि जगत का व्यवहार भी माया है। केवल राम ही जीव को माया से मुक्त करने में समर्थ हैं–

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

''माया दोय प्रकार की, जो कोई जानै वाय।
एक मिलावै राम को, एक नरक ले जाय।।''

माया को त्रिविध वृक्ष के समान वर्णित किया है–

माया तरवर त्रिविध का, साखा दुख संताप
पंथी को छाया नहीं, फल फीकौ तनि ताप। (कबीर समग्र)

कबीर के मायावाद में वेदान्त का स्पष्ट प्रभाव होने के कारण 'भावमय भ्रम' के रूप में चित्रित करते हुए माया को अनिर्वचनीय कहा है।

''मीठी–मीठी माया तजी नहिं जाई।
अनगयानी पुरूष को मोलि–मोलि खाई।। (कबीर ग्रन्थावली)

वह समस्त सृष्टि को ही मायामयी स्वीकारते हैं। माया से मुक्ति सद्गुरू के द्वारा ही सम्भव है।

वह भक्ति और मुक्ति का दाता तथा ज्ञान–चक्षुओं का उद्घाटक है। वह ''लोचन अनंत उघाडिया, अनत दिखावण हार'' के रूप में है।

''माया–दीपक नर पतंग , भ्रमि–भ्रमि इबै पडंत।
कहै कबीर गुरु ग्यान थे, एक आध उबरंत।।'' (कबीर समग्र)

'जगत' को कबीर ने 'स्वप्नवत्' एवं 'असार' माना है। यह संसार दुःखमय है। यह एक ऐसा वृक्ष है, जिसका कोई अस्तित्व नहीं है– ''तरवर एक पेड़ बिनु ठाढ़ा। उन्होंने जगत को मिथ्या, मृग–तृष्णा, स्वप्न, निस्सार तथा असत् रूप में ही वर्णित किया है।

कबीरदास आत्मा को जन्म–मरण के बन्धनों से मुक्त मानते हैं। मुक्तात्मा का वह ब्रह्म में इस प्रकार तादात्म्य मानते हैं कि फिर दोनों का पृथक होना असम्भव है। उनके अनुसार आत्मा का परमात्म तत्व में, बूंद का समुद्र में विलीन होना ही मुक्ति है। बिना भक्तिभाव के मुक्ति संभव नहीं। निर्वाण पद ही मुक्ति है। ''कहै कबीर ते ऊबरे, जे रहे राम ल्यौ लइ।।'' कबीर ने मुक्ति का वर्णन कैवल्य भाव से भी किया है। इसके अनुसार कार्य गुण कारण गुणों में लीन हो जाते हैं–

''कहै कबीर मन मनहिं मिलाया।'' – (कबीर ग्रंथावली)

''कबीर ने मुक्ति की अवस्था को ब्रह्मकारता की अवस्था माना है। उनका मत यह है कि जीव ब्रह्मस्वरूप होकर उसी के समान सत् चित् और आनन्द रूप हो जाता है।''[6]

साधना की प्रारम्भिक स्थिति में कबीर ने दुःख निवृत्ति को मुक्ति माना है यही आगे चलकर उन्होंने संसार बन्धन से निवृति को ही मुक्ति के रूप में स्वीकारा। यह मुक्ति आत्म स्वरूप के ज्ञान से ही सम्भव होकर चित्त की शान्त अवस्था है। ब्रह्म से अभेद की स्थिति ही वास्तविक मुक्ति है। वे सम्पूर्ण सृष्टि में आत्मतत्व का ही विस्तार देखते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कबीर के दार्शनिक विचारों पर अद्वैतवादी वेदान्त दर्शन का प्रभाव है। उन्होंने ब्रह्म और जीव तथा ब्रह्म एवं जगत सभी की अद्वैतता का प्रतिपादन किया है। 'अयमात्मा ब्रह्म' की भॉति आत्मा को ही परमात्मा स्वीकारते हुए दोनों में एकत्व की सृष्टि की

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

है। कबीर की अभिव्यंजना शैली शक्तिशाली होने के कारण उनके काव्य में भावना–तत्व की प्रचुरता एवं सत्य की अनुभूति और ज्ञान की गंभीरता का समावेश भी है।

कबीर का दर्शन चेतना के उस विकसित स्तर पर दृष्टव्य है जहॉ शास्त्र व्यवस्थित न होने पर भी अनुभूति के द्वारा आध्यात्मिक सत्यों का साक्षात्कार होता है। जन्मान्तरवाद, कर्मवाद आदि सिद्धान्तों का वर्णन भी उनके काव्य में यत्र–तत्र परिलक्षित होता है, जो उनके दार्शनिक पक्ष एवं विस्तृत ज्ञान का परिचायक है।

ब्रह्म निर्विवेश तत्व है। माया अत्यन्त विकट है। वह ब्रह्म की ही शक्ति है, परन्तु जीव उसी के कारण सृष्टि के प्रपंच और जन्म–मरण के बन्धन में आबद्ध रहता है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया– 'मसि कागद छुयो नहिं, कलम गही नहिं हाथ' एवं स्पष्ट कहा– 'चारिउ जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात'। उनका दर्शन लोकगीतों में प्रस्फुटित होकर लोक–दर्शन बनकर जन–जन में व्याप्त हो गया। उनका दर्शन जीवन के निकट है और सहजता उनके काव्य की विषेशता है। 'मैं कहता हॅू आंखिन' देखी, तू कहता कागद की लेखी' उनकी यथार्थ स्वानुभूति की परिचायक है। उनके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब ही उनके साहित्य में प्रतिबिम्बत होकर जीवन–दर्शन का सूचक है।

कबीर का अद्वैती स्वरूप न तो शंकर से ही पूर्णतया मेल खाता है ओर न ही किसी अन्य से ही। सर्वत्र समन्वयकारिणी प्रतिभा के दर्शन होने के साथ उन्होंने अद्वैत और विशिटाद्वैत के प्रधानतत्व ज्ञान और भक्ति का भी सामंजस्य स्थापित किया है। वे अनेकानेक दर्शनों को आत्मसात करते हुए कुछ अपने निश्चित सिद्धान्त और दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए परिलक्षित होते हैं। कबीर को हम भारतीय आध्यात्मिक समदर्शन के प्रतीक के रूप में स्वीकारते हैं। उन्होंने त्याग, तपस्या, सदाचार, समता और सद्भावना का साम्यवाद भारतीय जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया जिसमें जनहित की भावना निहित थी। उनका दर्शन किसी व्यक्ति समाज, जाति, देश या वर्ग विशेष के लिए न होकर सम्पूर्ण मानवमात्र के लिए है। उनके काव्य में सत्यानुभूति का दर्शन मिलता है।

## सन्दर्भ सूची

1– होरो पुलकेरिया– कबीर साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन, एस0के0 पब्लिकेशन रॉची– 841008 पृष्ठ सं0–15
2– वही पृष्ठ सं0–17
3– शर्मा यज्ञदत्त कबीर साहित्य और सिद्धान्त, अक्षरम् 462 सेक्टर–14 सोनीपत (हरियाणा) संस्करण– 1974, पृष्ठ सं0–65
4– युगेश्वर कबीर समग्र– हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स प्रा0लि0 सी 29/30, पिशाचमोचन, 358470, तृतीय संस्करण–1996 पृष्ठ सं0– 164
5– सक्सेना डॉ0 द्वारिका प्रसाद – हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, तृतीय संस्करण 1972, पृष्ठ सं0– 95
6– शर्मा यज्ञ दत्त – कबीर साहित्य और सिद्धान्त– अक्षरम्, 462 सेक्टर –14 सोनीपत (हरियाणा) संस्करण– 1974– पृष्ठ सं0 72